International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 6.924 Volume 9, Issue 12, December 2022
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

कबीर के साहित्य में समाज के समन्वय का स्वरूप का अध्ययन

शीतल सोनी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, द ग्लोकल यूनिवर्सिटी, सहारनपुर, उ. प्र.
डॉ कामिल
प्रोफेसर,हिंदीसुपरवाइजर, द ग्लोकल यूनिवर्सिटी, सहारनपुर, उ. प्र.

सारांश

कबीरदास हिन्दी के कालजयी रचनाकार हैं। भक्ति आन्दोलन में उनका योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण रहा हैं। उन्होंने आजीवन अपने सिद्धान्तों तथा साधना का प्रचार प्रसार किया। कबीर की कविता ताजमहल नहीं है, न ही विहारोदन्यान है और न वह सुन्दर सरोवर के सदृश्य बल्कि वह तो पर्वतीय दुर्ग के समान हैं। जिसमें सभी छोटे बड़े पत्थर बिना बहुत नापे–जोखे या खराद के बैठाए हुए दिखलाई देते हैं। कबीर का काव्य समाज को परिवर्तित करने का पूरा अभियान हैं। यही नहीं कबीर का काव्य–शरद का आकाश भी है और सान पर चढ़ा शस्त्र भी हैं। कबीर एक महान सन्त कवि, समाज सुधारक, रहस्यवादी और सामाजिक विद्रोह के कवि माने गये हैं।। कबीर के काव्य में एक ओर इतनी तड़प और इतना अकेलापन है और ऐसी मस्ती का ज्वार, है सारी सृष्टि को समेटता चला जाता हैं।भक्तिकाल को स्वर्णकाल का महत्व जिन कवियों के कारण है उनमे कबीर एक हैं। वे जन्म जात विद्रोही और क्रान्ति के अग्रद्त हैं। उनके निर्माण में युगीन परिवेश महत्वपूर्ण रहा। एक जाज्वल्यमान नक्षत्र, अंध परम्परा को नकारने वाले, क्रान्ति की दुहाई देने वाले, दलितों के, पीड़ितों के कवि, धर्म, परम्परा, समाज संस्कृति का विरोध करने वाले, जिन्होंने कथनी औरकरनी में समानता दिखायी हैं। उनके काव्य में जीवन के अनुभूत सत्य हैं। कबीर का विरह केवल आराध्य तक पहुंचना नहीं हैबल्कि मन की, शरीर की सम्पूर्ण विकृतियों को दूर करना हैं। कबीर का प्रेम उस युग के लिएही नहीं आज

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

के लिए भी आवश्यक हैं। उनके मत से जिसके हृदय में प्रेम नहीं उसका इससंसार में आना व्यर्थ हैं। मानव जीवन की सार्थकता प्रेम में ही हैं।

मुख्यशब्दकबीर,साहित्य,समाज के समन्वय,भक्ति आन्दोलन,कबीर का काव्य

प्रस्तावना

विषम और कराल परिस्थितियाँ महापुरुषों को जन्म देती हैं। कबीर के पूर्व का परिस्थितियाँ एवं कबीर की समकालीन परिस्थितियाँ भी कबीर का उग्र और सौम्य बनाती हैं। युग पुरुष कबीर के आविर्भाव काल में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यक परिस्थितीयाँ संक्रमण काल से गुजर रही थी। उक्त सभी क्षेत्र में सामान्य जन का शोषण हो रहा था। हिन्दू राजा महाराजा आपसी विद्वेष और फूट के कारण शक्तिहीन हो गये थे, भारत की अपार संपदा पर मुसलमानों की गीद्ध दृष्टि लगी थी। पहले तो लुटेरों के रूप में आकार भारत में मुसलमान लूटपाट कर अपने वतन को चले जाते थे, किन्तु कालान्तर में भारत में ही रहने लगे। कबीर दास के व्यक्तित्व और कृतित्व को, उनके जीवन और दशन को वास्तविक रूप में समझने के लिए विशष रूप से उनके पूर्व और उनकी समकालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानना आवश्यक हैं उनकी प्रतिभा में पूर्ण मौलिकता रखते हुए भी उनके जीवन और दशन के निर्माण में उन्हैं प्राप्त परम्परओं का, सदगुरू की प्रेरणाकता और अपने समय के समाज जीवन की प्रतिक्रिया का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव निश्चित रूप से देखने में आता हैं।

कबीर दास पूर्व परिस्थितियाँ

शुद्ध ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भारत के मध्ययुग की धार्मिक परिस्थितियों के विश्लेषण में 5वीं से 16वीं शती का समय महत्वपूर्ण माना जायेगा। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य मानव के मन को

विशष दिशा में मोड़कर बहुत दूर तक अपना प्रभाव डालते हैं। इस दृष्टि से धार्मिक प्रवृतियों की प्रधानता से मध्य युग का समय 18वीं शती तक मानना उचित प्रतीत होता हैं।

धर्म के प्रति आधुनिक मनोवृति के दशन 18वीं शती के बाद होते हैं। देश की राजनीतिक परिस्थतियाँ इन धार्मिक प्रवृतियों के लिए विशष रूप के जिम्मेदार रही। काव्य, नाटक, शिल्प, संगीत, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि क्षेत्रों में भारत पिछड़ा रहा, परन्तु भगवद् भक्ति के क्षेत्र में वह आगे रहा।

धामिक परिस्थिति

भारत में प्रथम शताब्दी के बाद धर्मसाधना एवं दशन का महत्पूर्ण साहित्य निर्मित हुआ। इन धार्मिक एवं दाशनिक ग्रन्थों के निर्माण की प्ररेक शक्ति उस समय देश में प्रवर्तित एवं नवोदित विभिन्न सम्प्रदाय थे। ये प्रवृतियाँ प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी और जातीयता के प्रति नया दृष्टिकोणवाली होने से नवीन उत्साह और जोश से पूर्ण थी। उस समय भारत के उत्कर्ष के लक्षणव्यक्त हो रहैं थे, पतन की कोई संभावना न थी।छठी शताब्दी के बाद धर्म प्रवृतियों में नवीनता आई। उन पर तांत्रिक प्रभाव स्पष्ट दिखताथा। इस प्रभाव से ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी नहीं बच पाये। प्राथमिक, प्रभाव के रूपमें तन्त्रशास्त्र उनके लिए सहायक सिद्ध हुआ परम्तु, आगे चलकर उनमें अनेक विकृतियों का प्रवेशहो गया। इसके फलस्वरूप होने वाले अनिष्टों को देखकर भारत के महान् मनीषी भी स्तब्ध रहगये। 18वीं शती के अन्त तक उन्मुक्त विकास के लिए अनुकुल परिस्थितियों का तो अभाव रहा,प्रतिकूलता भी इसमें बाधा बन के आयी थी। परन्तु मध्यकालीन भक्ति साहित्य को देखते हुए यहकहना पड़ेगा कि भारत की प्राण रूप उसकी अध्यात्म–चेतना का दमन किसी के द्वारा भी सम्भव नहुआ, बल्कि दमन का परिणाम विपरीत हुआ। यह प्रवृति और अधिक शक्ति सम्पन्न हुई, परन्तुइसके साथ दो अनिष्ट तत्व भी आये (1) धर्मान्तर की स्थिति–इस लोभ के प्रचार के कारण औरब्राह्मण धर्म की संकुचितता के परिणाम स्वरूप हिन्दू का मुसलमान हो जाना और (2) अपनेसम्प्रदाय की गूढ़ता

को सुरक्षित रखने के प्रयत्नों में स्वस्थ दृष्टि और विवेक के अभाव से विकृतियोंका प्रवेश।इन दो कारणों से मूल वैदिक आस्तिक परम्परा से विच्छिन्न होकर धर्म प्रवृतियों में नास्तिकस्वच्छन्दता आ गई उदाहरणार्थ राजा भोज के समय 'नील परी–दशन' का अर्विभाव हुआ। उसकेसिद्धान्त में त्रिरत्न अर्थात सुरा–सुन्दरी और काम को प्रथम स्थान दिया गया।

पूर्व मध्ययुग की विविध साधनाओं के अन्तर्गत छठी से दसवी शताब्दी तक मन्त्र, यन्त्र औरबुद्वा के तांत्रिक सिद्वान्त का प्रभाव वैष्णव, शाक्त, शैव, गाणपत्य, सौर, बौद्ध और जैन सब धार्मिकसम्प्रदायों पर पड़ा। उन्होंने अपने–अपने आराध्य को सर्वश्रेष्ठता की मान्यता देकर उपासना–भावको अधिक प्रगाढ़ता दी। इस भाव विकास के साथ दशन–पक्ष भी पुष्ट हुआ। इसके महान् मनीषियोंके जीवन में कर्मव्यता, व्यक्तित्व में जागरूकता और दशन में प्रतिभा का उत्कर्ष देखने मे आता हैं।परन्तु विदेशो आक्रमणों के साथ यह स्थिति बदल गई। इस्लाम–धर्म के आंतक से भयभीत प्रजाक्षुब्ध हो उठी। विदेशां से तो उनके सम्बन्ध शिथिल हुए ही, सामान्य प्रजा के जीवन में भीशिथिलता आ गई। महान् मनीषियों के धर्म–निर्देश का आश्रय पाकर ही लोठा कुछ आश्वस्त होपाए।

तंत्र और प्रमाण–ग्रन्थों को सामान्य मनुष्य हृदयंगन नहीं कर सकता था, परन्तु पांच राजका वैष्णव–मन सबके लिए ग्राह्य था और पंचदेवो पासना के विधान से सबकी रूचि की रक्षा भी होजाती थी। इसके अलावा पाशपत–मत के साथ शैवागम का प्रवर्तन भी था जो शिव–शक्ति कीएकता के प्रतीकात्मक वर्णन में आत्मा–ब्रह्या की एकता का निरूपण कर रहा था। इस काल मेंप्रत्येक धर्म–सम्प्रदाय संघटित और प्रौढ़ हो रहा था। दक्षिण में आलवारों द्वारा प्रवर्तित वैष्णव–धर्मकी बागडोर ऐसे कट्टर–पंथी आचार्यो के अधिकार में आई कि वे परम्पराओं से प्राप्त शास्त्रीयमर्यादाओं की रक्षा में भी अपने धर्म की सुरक्षा समझते थे। दूसरी ओर भक्तों में खानपान के व्यवहारमें जाति भेद एवं छूआछूत की भावना न थी। वे शूद्र तथा स्त्री को भक्ति का अधिकारी मानते थे।परन्तु इन आचार्यो ने शूद्रों से भक्ति के अधिकार भी छीन लिए और भक्ति की व्यवस्था अपने वर्गके उच्च वर्ग के हाथों में रखी।तब 'श्री पर्वत' प्रसिद्ध तांत्रिक पीठ था। उसके आश्रम में शैवमत की एक शाखा–कापालिकमत का प्रर्वतन हो रहा था। 8वीं 9वीं शताब्दी

में बौद्ध, शैव, शाक्तों तथा योगियों एवं तांत्रिकों केग्रन्थों में कुछ समान विशषताएँ देखने में आती हैं, जैसे कि बाह्याचार का विरोध, चितशद्धि, परमात्मप्राप्ति में शरीर का साधन के रूप में महत्व, समरसी–भाव, स्वसंवेदन आदि। 'स्वसंवेदन' उस युगकी महत्वपूर्ण साधना थी। उससे उनका तात्पर्य था– 'निष्कंचुक जीव का शिव हो जाना' अर्थात्जीव–शिव की अभिन्नता का अनुभव।परमात्म रहस्य के अनुभवी जैन सन्तों को 'मरमी' की संज्ञा दी जाती थी। जैन साधकजोइन्दु ने स्वंसवेदन का रहस्य स्पष्ट करते हुए कहा ह– ''देवालय, शिक्षा, चित्र या चन्दन मेंदेवता नहीं हैं। वह अक्षय, निरंजन, ज्ञानमय शिव तो समचित्त में निवास करता हैं।'' यहरहस्य–साधना पद्धति सन्तों की निर्गुण–भक्ति की परम्परा में अविकल रूप से चली आई हैं। कबीरने भी इसी रहस्य साधना–पद्धति द्वारा ब्रह्मात्मैक्यानुभव किया।

इस निर्गुण भक्ति के पनपने में 4 दिन की मूल वैष्णव–भक्ति में योग साधना एवं ज्ञान मार्गके समन्वय ने विशष योगदान दिया। प्रारम्भ में भोगमत का प्रादुर्भाव उत्तर भारत में एक शक्तिशालीसाधना पद्वति के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इसके साथ दक्षिण की स्त्री–शूद्रों की भक्ति की पात्रताप्रदान करने वाली विचार धारा से भी उत्तर के नाथ और संत प्रमाणित हुए। सर्वप्रथम गोरखनाथ नेहिन्दू–मुस्लिम सता की भावना में प्रेरित होकर एक मुसलमान 'रतन हाजी' को अपना शिष्य बनाकर इस विचारधारा का समर्थन किया। परन्तु नवीन भक्ति मार्ग के प्रवर्तन का श्रेय गुरू राघवानन्दके शिष्य और काशो में शंकर अद्वैत की शिक्षा प्राप्त करने वाले स्वामीनन्द को दिया जाता हैं।जिन्होंने अन ुभव किया कि स्त्री–शद्रो के हृदय में भी ईश्वर प्रेमानुभूति की सच्ची लगन होती हैं।

राजनीतिक परिस्थिति

विदेशो आक्रमणकारियों ने भारत की राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था में भारी उथल–पुथल मचा दी। गजनी तथा गोरी वंहा के मुसलमानों के आक्रमण हुए और तराइन की लड़ाई (सं. 1250) में विजय प्रकट मुहम्मद गोरी ने यहाँ पर अपने स्थायी राज्य की नींव डाली। उस काल के इस भूखण्ड पर मुसलमानी शासन का आरम्भ हो गया। गुलाम वंष (सं. 1263–1347), खिलजी वंष (1347–1377) तथा तुगलक वंष (1377–1469) के भिन्न–भिन्न

व्यक्ति क्रमशः सुलतान बन कर यहाँ के सिंहासन पर बैठै। ये सुलतान अपने मजहब–इस्लाम की शरीअत के न्यूनाधिक पाबंद रहते हुए भी अपना शासन अपरिमित अधिकार की प्रभुता के अर्थ में चलाते थे। परन्तु व्यावहारिक बातों में ये सदा निरकुंश बने रहते थे। मुसलमान उमरां पूरे ठाठ–बाट के साथ जीवन व्यतीत करते थे और इसमे कला, साहित्य आदि की उन्नति भी होती जा रही थी।

सामाजिक परिस्थिति

मध्ययुग का समाज–जीवन धर्म द्वारा संचालित और नियंत्रित था। यह तथ्य हमें तत्कालीन साहित्य में प्रतिबिंबित युग–जीवन में उपलब्ध होता हैं। उस समय समाज के प्रत्येक स्तर पर धर्मजीवन की धड़कन थी। इसी कारण विधर्मियों के आक्रमक–अभियानों में राजनीतिक जुल्मों में सामाजिक सुधारक प्रवृतियों में और साहित्य में धर्म के उन्मूलन या उसकी प्रतिष्ठा के संघर्ष मूलक प्रयत्न स्पष्ट दिखते हैं। समाज की प्रिय धार्मिक भावना को अपनाने वाला विदशो धर्ममतावलंबी लोकप्रिय हो सकता था और अपनी धार्मिक भावनाओं का प्रचार–प्रसार कर लोक–जीवन को प्रभावित भी कर सकता था। धर्मशास्त्र और धर्मसाधना एक दूसरे में ओत प्रोत हैं। मध्ययग के सर्वमान्य गृहस्थ जीवन में धर्मशास्त्र का अनुशासन था। विभिन्न सम्प्रदायों में दीक्षित साधक अपने–अपने सम्प्रदाय में मान्य ग्रन्थों के निर्देशानुसार साधना करते थे। लोगों को तीर्थाटन, स्नान, व्रत, उपवास, पुण्यकर्म, स्वर्ग–नरक, कर्मफल और पुर्नजन्म पितृश्राद्ध वर्णाश्रम व्यवस्था आदि में पूर्ण श्रद्धा थी और कर्मकाण्ड के अनुरूप विविध देवी–देवताओं की वे पूजा करते थे। इन्हीं कारणों से मनुष्य अधिक बहिर्मुख हो गया था और बाह्याचार मूति र्पूजा आदि को विशष महत्व देता था।

सांस्कृतिक वातावरण

भिन्न–भिन्न विचारों तथ्य संस्कृतिया के संघर्ष के कारण एक नवीन प्रकार के समाज का निर्माण होता जा रहा था। लोगों को किसी योग्य मार्ग दशक की आवश्यकता थी। यह विकट कार्यउसी के द्वारा संभव था, जिसकी बुद्धि परस्पर–विरोधी प्रकृति के बीच समन्वय तथा सामंजस्य लाने

के अतिरिक्त किसी स्थायी व सार्वभौम नियम तथा आदश का प्रस्ताव रखने में भी समर्थ हो। उक्त युग के पूर्वार्द्ध तक यहाँ का क्षेत्र तैयार हो चुका था। उसके उत्तरार्द्ध के आरम्भ से ही कुछ ऐसे व्यक्यिों का प्रादुर्भाव होने लगा था, जिन्हैं कम से कम पथ–प्रदशक संतो के नाते स्मरण करने की प्रवृति होती है। परिस्थितियों की प्रतिक्रिया से उनका आंतरिक चैतन्य उद्‌बुद्ध हुआ। उन्होंने अबाधगति से कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया, अदम्य प्रखरता से समस्या की गंभीरता की चाह ली और संघर्ष का निर्भय होकर सामना किया।

इसमें समाज का उद्धार हुआ और धर्म की रक्षा हुई। तब समाज की रक्षा में राजनीति और धर्म दोनों जिम्मेदार माने जाते थे। परन्तु राजनीतिक वातावरण विषय था। मालवा, जौनपुर, गुजरात में राजपूत राजा और मुसलमान सुलतानों में युद्ध होते थे, दिल्ली और बंगाल के प्रदेशां में सिकंदर लोदी निर्दयतापूर्वक हिन्दुओं का कत्लेआम करता था। इन परिस्थितियों से धर्म, कला, साहित्य और समाज प्रभावित हुए। लोगों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। मुसलमान शासन में हिन्दू निर्धनता और संघर्ष स हार– से गये थे।

हिन्दू को उच्च पदाधिकार नहीं दिया जाता था और शासक वर्ग विलासी था। चौदहवों शताब्दी के अंत तक प्रजा की शक्ति और पौरूष का ह्रास हो गया, उनकी प्रतिभा कुंठित हो गयी। ऐसे ही मौके पर स्वामी रामानन्द और कबीर जैसे वैष्णव भक्त हो गये।

कबीर के युग की धार्मिक स्थिति

कबीर से पूर्व ही हिन्दू पर संकट छा गए थे। इस्लाम ने हिन्दुओं को जो कुछ दिया वह सब उन्हैं प्राप्त हुआ। उसने धर्म पर जो भयंकर उत्पात किए, हिन्दुओं का विवशतावश। सब सहन करना पड़ा। इस्लाम समाज की छत्र–छाया में हिन्दू मुसलमान बन रहैं थे। इस्लाम प्रचार की प्रतिक्रिया से हिन्दू भावना अनेक रूपों में व्यक्त हुई, अपनी भूमि पर इस्लाम को अपना सहचर समझकर अनेक भारतीय धर्म सम्प्रदाओं ने उसके प्रति जिस सहिष्णुता का परिचय दिया, वह सहज सांस्कृतिक विरासत थी। बौद्धधर्म में विकृति आने पर आर्य– संस्कृति को बहुत बड़ा

धक्का लगा। हिन्दू धर्म की एकता खण्डित हो गई। बौद्धधर्म के प्रायः लुप्त हो जाने पर भी वह अपने सिद्धान्तों की छाप अवश्य छोड़ गया। अमात्यवाद की चरम अभिव्यक्ति नागार्जुन के शून्यवाद में हो चुकी थी। औपनिषदिक आत्मा के खण्डन पर शून्य की प्रतिष्ठा ने भारतीय चिंतन की परम्परा में एक बड़ी क्रान्ति और प्रगति को जन्म दिया। शंकर के मायावाद पर आधारित अद्धैतवाद. शून्यवाद के लिए एक चुनौतीथी। बौद्धमत की विकृति और विफलता के कारण की बज्रयान और सहजयान सम्प्रदायों की उत्पति हुई, किन्तु कालक्रम से वे भी विकृतियों से विगलित हो गए। फिर भी वे अपनी कुछ परम्पराएं और साधनाऐ छोड़ गए थे। बज्रयान और सहजयान की प्रतिक्रिया में ही नाथपंथ की उत्पति हुई। आचार्य द्विवेदी के अनुसार 'नाथपंथ' सहजयान और बज्रयान का ही परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप हैं।20 राहुलजी ने तो नाथपंथ के प्रधान आचार्य गोरखनाथ को वज्रयान का ही आचार्य कहा हैं। नाथपंथ के स्रोत की विवेचना करते हुए विद्धानों के मत दष्टव्य हैं– 'नाथपंथ को दाशनिक दृष्टि से शैवमत के अन्तर्गत रखा हैं, किन्तु व्यावसायिकता की दृष्टि से उसे पत ंजलि के योग से सम्बन्द्ध किया हैं।21 सभी वर्गो एवं श्रेणियों में इसका आदर होता था। यही कारण हैं कि राजा से रंक तक की कथाएं इससे संबंध रखती हैं। कबीर के समय में भी यह मत प्रचलित था। नाथपंथ में 'निरंजन' शब्द का गान किया गया हैं। यह निरंजन शब्द निर्गुण का ही पर्याय है। इस्लाम धर्म की अपेक्षा सूफीमत कबीर–युग में अधिक प्रबल था। आचार्य द्विवेदी के अनुसार मजहबी मुसलमान हिन्दू धर्म के मर्मस्थल पर चोट नहीं कर पाये थे, वे केवल उसके बाहरी शरीर की विक्षुब्ध कर सके थे, पर सूफी लोग भारतीय साधना के अविरोधी थे। उनके उदारतापूण प्रेममार्ग में भारतीय जनता का चित्त जीतना आरम्भ कर दिया था। फिर भी ये लोग आचार प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके। उनका सांमजस्य आचार – प्रधान हिन्दू धर्म के साथ नहीं आ सका। बौद्ध धर्म के साथ–साथ जैन–धर्म का भी प्रचलन था। जैन धर्म के अन्तर्गत भी विभिन्न सम्प्रदायों का उदय हो गया था। स्पर्धा की भावना में कटुता के फल लगकर वे न केवल धर्म को छिन्न–भिन्न कर रहैं थे, अपितु सामाजिक जीवन को भी संकीर्ण बना रहैं थे। जैन धर्म भारत – भर में फैला हुआ था, किन्तु उसका अधिक प्रसार राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में ही था। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी अराजकता छाई हुई थी। विभिन्न

धार्मिक साधनाएं प्रचलित थी, जिन्हैं डॉ. सरनामसिंह शर्मा ने वैदिकधारा एवं वेद विरोधी धारा दो नामों से अभिहित किया हैं। वैदिकधारा के अन्तर्गत आने वाली साधनाएं केवल उच्च वर्ग को प्रश्रय देती थी और वेद विरोधी धारा के द्वार समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए खुले थे। इन दोनों वर्गो की साधनाओं और सम्प्रदायों में वैष्णव, शैव और शाक्त प्रधान थे। इनके अतिरिक्त बौद्ध, जैन और वैदिक कर्मकाण्डी भी थे। इन सम्प्रदायों क भी उपविभाग हो गये थे– वैष्णवधर्म में शंकर, रामानुज, माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि के सम्प्रदाय और वीर शैव सम्प्रदाय। इस प्रकार कबीर के जीवन काल में छः दशन एंव 96 पाखण्ड विधमान थे और इसी प्रतिफल धार्मिक परिस्थिति में कबीर का जीवन बीता।

सामाजिक और धार्मिक यथार्थ

कबीर का काल धार्मिक, सामाजिक पुनरूत्थान अथवा नव जागरण का था। कबीर काल दो संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न तनाव का था। दो सस्कृतियों के संगम से हर क्षेत्र में परिवर्तन एक सहज परिणाम था। जीवन दृष्टि, जीवन पद्धति और विचारों में एक क्रान्ति अपेक्षित थी। मूल्यों में बदलाव स्वाभाविक था। जिस प्रकार आज विज्ञान और धर्म में तनाव हैं– न हम विज्ञान को छोड़ सकते हैं और न धर्म आचरण को। एक ओर जड़ जगत के परमाणु को तोड़कर हमने अद्‌भुत आणविक शक्ति अर्जित कर ली हैं, दूसरी ओर चेतना, विवेक, धर्म, आस्था, सदाचार, पारस्परिक प्रेम,समता, संवेदना से हम करते जा रहैं हैं। हम विज्ञान–विवेक के समन्वय की खोज में तत्पर हैं।

विज्ञान ने हमें सभी सुविधाएँ दी हैं– विनाश और निर्माण दोनों की कुंजी हमारे पास हैं और धर्म नेसम्यक् आचरण, विश्वबन्धुत्व, सर्व भूतहित की चेतना जगाई ह।कबीर युग में विज्ञान और धर्म के बीच तनाव नहीं था। उस समय परम्परागत रूढ़िवादीजीवन, शासनवादी चिंतन, निष्प्राण धर्म, सेवा – समता रहित आदश और सर्व धर्म समभाव, अभेददृष्टि, आंतरिक पवित्रता, सहज स्वानुभूति, विवेक पूर्ण चेतना के बीच तनाव था। वेद–उपनिषद् केपंडित शास्त्रार्थ करना जानते थे, जीवन जीना नहीं, ब्रह्य को सत्य मानकर श्री अद्धैत की बातकरके भी, वे अज्ञानी असाधु थे। परस्पर घृणा के वे पोषक थे प्रेम के नहीं।

उदै अस्त की बात कहतु हैं। सब का किया विवका हो।

घाटै–बाटै का जग दुखिया क्या गिरही वैरागी हो।

सुखदेव अचारज दुख कै कारनि गरभ सौं माया त्यागी हो।

जोगी दुखिया जंगम दुखिया तपसी कौ दुख दूंना हो।

आसा त्रिसनां सबकौ व्यापै कोई महल न सूना हो।

सांच कहौ तो कोई न मानै झूठ कहा नहिं जाई हो।

ब्रह्म बिस्नु महैं सुर दुखिया जिनु यदुराज चलाई हो।

कहैं कबीर सकल जग दुखिया संत सुखी मन जीती हो।29

मुसलमान विदेशो थे, उनकी संस्कृति सर्वथा भिन्न थी, वे तलवार के बल पर अपने धर्म को फैलाने के लिए कृत–संकल्प थे, अपने महजब के आगे किसी महजब की अस्थाई स्वीकार करना उनके स्वाभाव में न था। उनकी दृष्टि में उदारता, करूणा, दया, मैत्री, समता, सहिष्णुता, सहयोग का अभाव था। धर्म के प्रति कट्टरता उनका स्वभाव था। धर्म ओर जीवन में कोई सतुंलन न था। ईश्वर में विश्वास करके भी वे हिन्दुओं को हैंय दृष्टि से देखते थे। ईमान–सच्चाई पर उनके धर्म में बल था पर वे घृणा भाव से भरपूर थे अपना धर्म फैलाने वाले श्रवण हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाने के लिए वे क्रुर थे। मानवी मूल्यों के प्रति वे अंधे थ– स्वतन्त्रता, समता, सहिष्णुता, धार्मिक, सामाजिक उदारता के प्रति वे उदामीन थे। शारीरिक बल और अस्त्र–शास्त्र से अत्याचार करना ही उनका लक्ष्य था। मन्दिरों को ध्वस्त करना, महिलाओं का सतीत्व नष्ट करना, धर्म प्रसार के लिए अपढ़–निर्धन असहाय को मजबूर करना उनके धर्म का अंग था। हृदय की शुद्धता और विवेक महत्वहीन थे, उनके लिए। हां उनकी संकीर्णता के विरोध में सूफी हुए। उन्होंने कहा हैं –

एकहिं जोति सकल घर व्यापक दूजा तन्त्र न कोई।

कहैं कबीर सुनौ रे संतौ भटकि मरै जनि कोई।।30

कबीर ने हिन्दुओं–मुसलमानों दोनों की जीवन पद्धति देवी, दोनों के खोखलेपन को समझा, दोनों को सत्य से दूर पाया। दोनों ईश्वरवादी होते हुए इश्वर की सन्तान को अभेद दृष्टि से नहीं देखते थे। एक के लिए मन्दिर महत्वपूर्ण था, दूसरे के लिए मस्जिद। धर्म और जीवन–प्रक्रिया में समन्वय नहीं था। दोनों ज्ञान छाँटते थे, पर वह शास्त्र–कुरान के पन्नों तक ही सीमित था। धर्म गुरूओं की कट्टरता से हिन्दू–मुसलमानों के बीच खाई बढ़ती जा रही थी। कबोर को इस धार्मिक–सामाजिक यथार्थ से जूझना था। एक ऐसा मार्ग चाहिए था जो ईश्वर में विश्वास रखकर दोनों धर्मो के बाहरी झगड़े का उन्मूलन करे। पण्डित, काजी सबको सच्चाई की ओर मोड़ा उन्होंने। कबीर प्रतिभा सम्पन्न थे, विचारक थे, चिंतक थे, जागरूक थे, संवेदनशील थे। उन्होंने अनुभव किया दो सभ्याताएं टकरा रही हैं, दो संस्कृतियों में तनाव हैं। इस तनाव में मानव–निर्माण की जो सम्भावनाएँ हैं, उनका उपयोग होना चाहिए। उन्होंने देखा हिन्दू–मुसलमान दोनों को मिलकर रहना हैं पर यह सम्भव तभी हैं तब दोनों लिया कि भेद पैदा करने वाले विनाशकारी भावों से मुक्ति पाना ही एकमात्र उपाय हैं शांति और सद्भाव से रहने का किसी जीवन पद्धति को हठपूर्वक श्रेष्ठ कहना पारस्परिक भेदभाव को बढ़ाना हैं। मुसलमानों को यह हठ छोड़ना होगा कि उनका धर्म ही एक मात्र धर्म हैं और सबको मुसलमान बन जाना चाहिए। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि हिन्दूओं को इस सांस्कृतिक संगम को स्वीकार कर अपनी रूढ़िवादिता को छोड़ना होगा।

आन्तरिक व बाह्य रूढ़िवादिता

कबीर स्वच्छन्द विचारक थे। वे मानवतावादी आस्था के साथ समाज में सुधार लाना चाहतेथे। अतः उन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जहाँ प्रगति को रोकने वाली रूढ़िया देखी, वहींउनका डटकर खण्डन किया तथा बाहरी आडम्बरों को बढ़ावा देनेवाले सभी धर्मो की खुलकरआलोचना की। धर्म के ठेकेदार बनने का दम्भ करने वाले पण्डे–पुजारियों, ढोंगी साध–फकीरों तथामुल्आओं को कबीर ने खूब फटकारा। वास्तव में समाज–सुधार और मानव–कल्याण की भावना सेप्रेरित होकर उन्होंने काव्य रचना की और इसे अपना अस्त्र

बनाना। कबीर ने हिन्दू–मुसलमानों दोनोंके पाखण्डो का खण्डन किया तथा उन्हें सच्चे मानव–धर्म को अपनाने क लिए प्रेरित किया।

अज्ञान जन्य पैदा हुई प्रथाएँ और कुप्रथाएँ कबीर को कुछ न कुछ कहने के लिए विवश करदेती हैं। व्रत, रोजा, तीर्थाटन, यज्ञोपवीत आदि को कबीर भ्रम जन्य मानते हैं।47 कबीर 'घूंघट प्रथाको भी सम्मान नहीं देते हैं। वे घूंघट प्रथा का तिरस्कार करत हैं। उनकी दृष्टि में मात्र घूघंट तान'लेने से कोई सती नहीं हो सकती। घूघँट स्त्री के आचरण का हृदय हैं। उसके सतीत्व कापरिचायक नहीं। इसीलिए वे कहते हैं– रहु ' रहु री बहुरिया घूघँट जिनि काढै, तथा अपनी विचारधारा को यह कहकर कि 'घूँघट काढयाँ सती न कोई।48

और अधिक प्रखर बना देते हैं। हिन्दुओं केअत्येष्टि–संस्कार की विविध तैयारियों को कबीर फिजूल का मानते हैं। शव तो मिट्टी हैं, उसके लिएविविध उपादान फिजूल हैं। इसलिए कहते हैं कि–

पाँच गज दोवटी– माँगी, चूँन लियों साँनि।

बैसंदर पोषरी हाँडी, चलो लादि पलाँनि।।49

उपसंहार

हिन्दी साहित्य का संत काव्य रचना धर्मिता, सामाजिक–साँस्कृतिक चेतना, मूल्य–चेतना और भावात्मक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से बेजोड़ है। इस काव्य का अपना एक अलग सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास है जिसे राजनीतिज्ञों अथवा इतिहासज्ञों ने नहीं लिखा है। इस इतिहास को लिखा है इन सन्तों ने, जिन्होंने एक सामाजिक व्यक्ति की हैसियत से समकालीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की विसंगतियों, अलगावों, असमानताओं, विरोधाभासों एवं द्वन्द्वों को नजदीक से देखा ही नहीं, भोगा भी है। इस भोगे हुए यथार्थ को एहसास करने और करानेवाले रचनाकारों में कबीर अग्रगण्य हैं। वे एक सामाजिक और मानवीय रचनाकार हैं जिनकी मूल्य चेतना की अहमियत इसलिए है कि उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों की

असंगतियों और अन्तर्विरोधों को समझ कर एक मिली–जुली संस्कृति का निर्माण किया है। उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य–चेतना मध्यकालीन सामन्ती मूल्यों को अवश्य प्रक्षेपित करती है, पर यह सामन्ती मूल्य उनके काव्य का वास्तविक मूल्य नहीं है, यह केवल यथार्थ मूल्यों के उपजाने में सहायता प्रदान करती है। उनकी वास्तविक मूल्यचेतना लोक–चेतना है जो सामन्ती मूल्य–चेतना के समान्तर ही पल्लवित और विकसित होती है। उनके काव्य में मूल्य–चेतना का जो स्वरूप हमें साफ तौर पर दिखलाई पड़ता है, वह कई दिशाओं में जुड़ा हुआ है। इन विभिन्न दिशाओं के परिप्रेक्ष्य में कबीर के काव्य में मानव–मूल्यों की तलाश करना ही मेरा मुख्य सरोकार है।कबीर की दृष्टि में आदश मानव वह है जो ईश्वर में विश्वासी हो, संसार के आकर्षण से विरक्त हो, भेदभाव से परे हो, सत्यनिष्ठ हो, मन–वाणी और कर्म से एक हो। मन यदि विषयी है तो वह उसके आदश मानव बनने में बाधक बनेगा। अतः आदश मानव की संरचना मन के नियन्त्रण पर सम्भव है। मानव की आदश स्थिति तो इसमें है कि वह अहंकार–रहित होकर, तत्त्वदर्शा बनकर, हंस की तरह नीर–क्षीर–विवेकी होकर, चंदन–सदृश शीतल बनकर, दुर्जनता को सज्जनता में परिवर्तित करने की क्षमता रखता हो। कबीर की सर्जना का मानव यही आदश मानव है। मानव–व्यक्तित्व के प्रखर आयामों के प्रति कबीर की चिन्ता है न कि उसकेयह शोभन स्थिति मिली है। अब जहाँ भी देखता हूँ, तुम्हीं दिखलाई पड़ते हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. राजदेव सिंह कला प्रकाशन, वाराणसी 2002
- सन्त कबीर का साहित्य डॉ. बिन्दु दूबे कला प्रकाशन, वाराणसी 2002
- सुन्दर ग्रंथावली पुरोहित हरिनारायण शर्मा वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1999
- दी सिख रिलिजन मैकलिक वेलयेडियर प्रेम, प्रयाग, 1987
- संत सुधाकर स ं. श्री वियोगी हरि सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली 1953
- संत कबीर डॉ. रामकुमार वमा र् साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1957
- संत कबीर माता प्रसाद गुप्त ज्ञान सागर प्रेस, बम्बई, 1989

- संत नामदेव का काव्य और संगीत तत्व डॉ. पुष्पा जौहरी, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 2011
- साहित्य का मर्म हजारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
- संत कवियों का छंद प्रयोग, संपरम्परा डॉ. शिवनन्दन प्रसाद साहित्य निकेतन, कानपुर सं2024
- हारीत स्मृति पं. हरिहर प्रसाद त्रिपाठी चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
- हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल श्याम प्रकाशन, जयपुर, 2009
- हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत प्रगति प्रकाशन, आगरा, 1961
- हिन्दी संत साहित्य डॉ. टी.एन.दीक्षित सरोज प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993
- हिन्दी काव्य धारा राहुल सांकृत्यायन किताब महल इलाहाबाद 2004
- हिन्दी साहित्य का आदिकाल आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विहार राज भाषा परिषद् परवा, 1961
- हिन्दी साहित्य की भूमिका डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी श्याम प्रकाशन, जयपुर, 2010